"Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India"

Sangeet Natak Akademi, New Delhi

"Data creation of folk dance kajari"

FINAL REPORT

Year-2015-16

Kundan Kumar

At+Po- Bandehra

Distt.- Khagaria

Pin- 851212

Via- Mahaddipur

Email- kkp9079@gmail.com

Mobile- 9199835674, 9386928141

Kundan Kumar

संगीत नाटक अकादमी के "भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं परंपराओं के संरक्षण की योजना" के अन्तर्गत 2015–16 में बिहार के लोकगीत "कजरी" पर डाटा क्रिएशन के लिए व्यक्तिगत अनुदान प्राप्त हुआ। इस योजना के तहत बिहार के विभिन्न जिलों में गायी जाने वाली कजरी के विभिन्न स्वरूपों को जानने एवं समझने का अवसर प्राप्त हुआ।

कजरी सावन महीने का प्रमुख लोक गीत है। बारिश के महीने में महिलाओं द्वारा पेड़ों पर झूला डालकर झूलते हुए कजरी गाने का प्रचलन था। वर्तमान समय में टेलीविजन, इंटरनेट के दौर में यह परंपरा खत्म हो रही है। कजरी की उत्पत्ती कैसे हुई यह बताना कठिन है। लेकिन उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर को कजरी का उत्पत्ती स्थान माना गया है। वहां मां विन्ध्यवासनी देवी का मंदिर है और कजरी का जन्म वहीं माना गया है। कजरी तीज की भी परंपरा है। कजरी में वर्षा ऋतु का गुणगान मिलता है।

मध्य भारत में सबसे लोकप्रिय राजा दादूराय की मृत्यु तथा रानी नागमती के सती हो जाने पर राज्य की शोकसंतप्त जनता ने अपनी वेदना की व्यंजना के लिए 'कजरी' नामक नए राग को जन्म दिया, जिसे आगे चलकर काफी लोकप्रियता हासिल हुई। दादूराय के राज्य में 'कजली' नामक वन की खूबसूरती के कारण इन गीतों को कजली और आगे चल कर 'कजरी' नाम दिया गया। 'कजरी' नाम के विषय पर दृष्टि डालें तो वस्तुतः सावन में काले कजरारे बादलों के कारण इसका नाम 'कजरी' पड़ा। यद्यपि कजरी हर क्षेत्र में गाई जाती है परन्तु काशी व मिर्जापुर की कजरी विशेष प्रसिद्ध है। मिर्जापुर की कजरी तो सर्वप्रिय हैं इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध है "लीला रामनगर की भारी, कजरी मिर्जापुर सरनाम"।एक मान्यता के अनुसार पति विरह में पत्नियां देवि 'कजमल' के चरणों में रोते हुए गाती हैं, वही कजरी के रूप में प्रसिद्ध है।

कजरी या कजली महिलाओं द्वारा गाया जाने वाला लोकगीत है। परिवार में किसी मांगलिक अवसर पर महिलाएँ समूह में कजरी गायन करती हैं। महिलाओं द्वारा समूह में प्रस्तुत की जाने वाली कजरी को 'ढुनमुनियाँ कजरी' कहा जाता है। जो उत्तर प्रदेश में काफ़ी प्रचलित है। भारतीय पंचांग के अनुसार भाद्रपद मास, कृष्ण पक्ष की तृतिया को सम्पूर्ण पूर्वांचल में 'कजरी तीज' पर्व धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन महिलाएं व्रत करती हैं। शक्ति स्वरूपा माँ विंध्यवासिनी का पूजन–अर्चन करती हैं और 'रतजगा' करते हुए समूह बना कर पूरी रात कजरी गायन करती हैं। ऐसे आयोजन में पुरूषों का प्रवेश वर्जित होता है। यद्यपि पुरूष वर्ग भी कजरी गायन करता है, किन्तु उनके आयोजन अलग होते हैं।

कजरी की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह कहना कठिन है, परन्तु यह तो निश्चित है कि मानव को जब स्वर और शब्द मिले, और जब लोक जीवन को प्रकृति का कोमल स्पर्श मिला होगा, उसी समय से लोकगीत हमारे बीच हैं। प्राचीन काल से ही उत्तर प्रदेश का मिर्जापुर जनपद माँ विंध्यवासिनी के शक्तिपीठ के रूप में आस्था का केन्द्र रहा है। अधिसंख्य प्राचीन कजरियों में शक्तिस्वरूपा देवी का ही गुणगान मिलता है। आज कजरी के वर्ण–विषय काफी विस्तृत हैं, किन्तु कजरी गायन का प्रारंभ देवी गीत से ही होता है।

भारत के हर प्रान्त के लोकगीतों में वर्षा ऋतु को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उत्तर प्रदेश के प्रचलित लोकगीतों में ब्रज का मलार, पटका, अवध की सावनी, बुन्देलखण्ड का राछरा तथा मिर्जापुर और वाराणसी की 'कजरी'। लोक संगीत के इन सब प्रकारों में वर्षा ऋतु का मोहक चित्रण मिलता है। इन सब लोक शैलियों में 'कजरी' ने देश के व्यापक क्षेत्र को प्रभावित किया है।

कजरी के वर्ण–विषय ने जहाँ एक ओर भोजपुरी के सन्त कवि लक्ष्मीसखी, रसिक किशोरी आदि को प्रभावित किया, वहीं

अमीर खुसरो, बहादुरशाह ज़फर, सुप्रसिद्ध शायर सैयद अली मुहम्मद 'शाद', हिन्दी के कवि अम्बिकादत्त व्यास, श्रीधर पाठक, द्विज बलदेव, बदरी नारायण उपाध्याय 'प्रेमधन' आदि भी कजरी के आकर्षण मुक्त नहीं रह सके। यहाँ तक कि भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने भी अनेक कजरियों की रचना कर लोकविधा से हिन्दी साहित्य को सुसज्जित किया। साहित्य के अलावा इस लोकगीत की शैली ने शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में भी अपनी आमद दर्ज कराई। उन्नीसवीं शताब्दी में उपशास्त्रीय शैली के रूप में ठुमरी की विकास यात्रा के साथ–साथ कजरी भी इससे जुड़ गई। आज भी शास्त्रीय गायक–वादक, वर्षा ऋतु में अपनी प्रस्तुति का समापन प्रायः कजरी से ही करते हैं।

'कजरी' के विषय परम्परागत भी होते हैं और अपने समकालीन लोक जीवन का दर्शन कराने वाले भी। अधिकतर कजरियों में श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। कुछ कजरी परम्परागत रूप से शक्ति स्वरूपा माँ विंध्यवासिनी के प्रति समर्पित भाव से गायी जाती हैं। भाई–बहन के प्रेम विषयक कजरी भी सावन में बेहद प्रचलित है। परन्तु अधिकतर कजरी ननद–भाभी के सम्बन्धों पर केंद्रित होती है। ननद–भाभी के बीच का सम्बन्ध कभी कटुतापूर्ण होता है तो कभी अत्यन्त मधुर भी होता है।

कजरी गीत का एक प्राचीन उदाहरण तेरहवीं शताब्दी का, आज भी न केवल उपलब्ध है बल्कि गायक कलाकार इसको अपनी प्रस्तुतियों में प्रमुख स्थान देते हैं। यह कजरी अमीर खुसरो की बहुप्रचलित रचना है, जिसकी पंक्तियां हैं–

"अम्मा मेरे बाबा को भेजो री,

कि सावन आया.....।"

बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री,

कि सावन आया।

अम्मा मेरे भाई को भेजो री,

कि सावन आया।

बेटी तेरा भाई तो बाला री,

कि सावन आया।

अम्मा मेरे मामू को भेजो री,

कि सावन आया।

बेटी तेरा मामू तो बांका री,

के सावन आया।

भारत में अन्तिम मुग़ल बादशाह बहादुरशाह ज़फर की एक रचना–

"झूला किन डारो रे अमरैयाँ...."

जो कि काफी प्रचलित है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कई कजरी रचनाओं को विदुषि गिरिजा देवी आज भी गातीं हैं। भारतेन्दु ने ब्रज और भोजपुरी कजरी की कई रचना की हैं। लोक संगीत का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। साहित्यकारों द्वारा अपना लिये जाने के कारण कजरी गायन का क्षेत्र भी अत्यंत व्यापक हो गया। इसी प्रकार उपशास्त्रीय गायक–गायिकाओं ने भी कजरी को अपनाया और इस शैली को रंगों का बाना पहना कर क्षेत्रीयता की सीमा से बाहर निकाल कर राष्ट्रीयता का दर्जा प्रदान किया। शास्त्रीय वादक कलाकारों ने कजरी को सम्मान के साथ अपने साजों पर स्थान दिया, विशेषतः सुषिर वाद्य के कलाकारों ने। सुषिर

Kundan Kumar

वाद्यों–शहनाई, बाँसुरी आदि पर कजरी की धुनों का वादन अत्यंत मधुर अनुभूति देता है। 'भारतरत्न' सम्मान से अलंकृत उस्ताद बिस्मिल्ला खाँन की शहनाई पर तो कजरी और अधिक मीठी हो जाती थी।

कजरी लोक संस्कृति की जड़ है और यदि हमें लोक जीवन की ऊर्जा और रंगत बनाए रखना हे तो इन तत्वों को सहेज कर रखना होगा। कजरी भले ही पावस गीत के रूप में गाई जाती हो, पर लोक रंजन के साथ ही इसने लोक जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक चेतना की अलख जगाने का भी कार्य किया है। कजरी सिर्फ राग–विराग या श्रृंगार और विरह के लोकगीतों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें चर्चित समसामयिक विषयों की गूंज सुनाई देती है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कजरी ने लोक चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया। आजादी की लड़ाई के दौर में एक कजरी के बोलों की रंगत देखें–

केतने गोली खइके मरिगै

केतने दामन फांसी चढ़िगै

केतने पीसत होइहें जेल मां चकरिया

बदरिया घेरि आइल ननदी।

1857 की क्रांति के पश्चात् जिन जीवित लोगों से अंग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हें कालापानी की सजा दे दी गई। अपने पति को कालापानी भेजे जाने पर एक महिला 'कजरी' के बोलों में गाती हैं–

अरे रामा नागर नैया जाला काले परियां रे हरी

सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा

नागर नैया जाला काले परियां रे हरी

घरवा में रोवै नागर, माई और बहिनियां रामा

सेजिया पै रोचे बारी धनियां रे हरी।

स्वतंत्रता की लड़ाई में हर कोई चाहता था कि उसके घर के लोग भी इस संग्राम में अपनी आहुति दें। कजरी के माध्यम से महिलाओं ने अन्याय के विरूद्ध लोगों को जगाया और दुश्मन का सामना करने को प्रेरित किया। ऐसे में उन नौजवानों को जो घर में बैठे थे, महिलाओं ने कजरी के माध्यम से व्यंग्य कसते हुए प्रेरित किया–

लागे सरम लाज घर में बैठ जाहु

मरद से बनिके लुगइया आए हरि

पहिरि के साड़ी, चूड़ी, मुंहवा छिपाई लेहु

राखि लेई तोहरी पगरइया आए हरि।

सुभाष चंद्र बोस ने जंग–ए–आजादी मे नारा दिया कि– 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा, फिर क्या था पुरूषों के साथ–साथ महिलाएं भी उनकी फौज में शामिल होने के लिए बेकरार हो उठीं। तभी तो कजरी के शब्द फूट पड़े–

हरे रामा सुभाष चंद्र ने फौज सजायी रे हारी

कड़ा–छड़ा पैंजनिया छोड़बै, छोड़बै हाथ कंगनवा रामा

हरे रामा, हाथ में झंडा लै के जुलूस निकलबैं रे हारी।

महात्मा गांधी आज़ादी के दौर के सबसे बड़े नेता थे। चरखा कातकर उन्होंने स्वावलंबन और स्वदेशी का रूझान जगाया।

नवयुवतियाँ अपनी–अपनी धुन में गांधीजी को प्रेरणा स्त्रोत मानतीं और एक स्वर में कजरी के बोलों में गातीं–

अपने हाथे चरखा चलउबै

हमार कोऊ का करिहैं

गांधी बाबा से लगन लगउबै

हमार कोऊ का करिहैं

कजरी में 'चुनरी' शब्द के बहाने बहुत कुछ कहा गया है। आज़ादी की तरंगें भी कजरी से अछूती नहीं रहीं हैं–

एक ही चुनरी मंगाए दे बूटेदार पिया

माना कही हमार पिया ना

चंद्रशेखर की बनाना, लक्ष्मीबाई को दर्शाना

लड़की हो गौरों से घोड़ों पर सवार पिया।

जो हम ऐसी चुनरी पइबै, अपनी छाती से लगइबे

मुसुरिया दीन लुटै सावन में बहार पिया

माना कही हमार पिया ना।

.....

पिया अपने संग हमका लिआये चला

मेलवा घुमाए चला ना

लेबई खदी चुनर धानी, पहिन के होइ जाबै रानी

चुनरी लेबई लहरेदार, रहैं बापू और सरदार

चाचा नेहरू के बगले बइठाए चला

मेलवा घुमाए चला ना

रहइं नेताजी सुभाष, और भगत सिंह खास

अपने शिवाजी के ओहमा छपाए चला

जगह–जगह नाम भारत लिखाए चला

मेलवा घुमाए चला।

कजरी और सावन एक दूसरे के पर्याय माने गए हैं। जब कजरी की बात चली तो सबसे पहले याद आता है मिर्जापुर। ऐसी मान्यता है कि कजरी की विधा वहीं से निकली है। हालांकि इसे दुनियां में फैलाने का काम बनारस ने किया। कजरी के जन्म के पीछे कई कहानियां प्रचलित हैं। कुछ लोग इसे कजली देवी से जोड़ते हैं जिनका इस इलाके में मंदिर है। जबकि कुछ इसका सम्बन्ध कजली नामक नायिका से बताते हैं जिसने प्रेम की तड़प के साथ अपने दुख और बिरह को स्वर देना शुरू किया तो कजली गायन की विधा जन्मी।

खैर, कजरी की मिथकीय कहानियां तो ढेरों हैं, लेकिन हकीकत की कहानी यही है कि कजरी गायन को मिर्जापुर और बनारस के कजरीबाजों ने आगे बढ़ाया।

सावन में रिमझिम फुहारों, बागों में झूला झूलती कजरी गाती गोरी अपने पिया के प्रति कभी आभार तो कभी संवेदना तो कभी विरह रस को अपने गीतों में अभिव्यक्त करने का अपना अलग महत्व है। इससे इतर गोरी–गोरी हथेलियों पर मेंहदी की लाली श्रृंगार रस को दर्शाता है। जबकी कजरी गीतों के माध्यम से परदेशी पिया की याद में विरह वेदना, सास, ननद की ताने, देवर–भाभी की

मीठी मनुहार, काले–काले बादलों से पिया तक अपनी संवेदनाओं को पहुंचाने का आग्रह, प्रेमी–प्रेमिका का लुकाछिप कर मिलना, जीजा–साली की ठिठोलीयां तथा शिव–पार्वती के श्रृंगार परक भावों की अभिव्यक्ति होती है। एक दौर था जब गावों में बारिश की रिमझिम फुहारों के बीच झूला झूलते देशी–गंवई महिलाओं के साथ–साथ समबेत स्वर में कजरी गाना गोरी मेमों (अंग्रेजों की पत्नियां) को भी बेहद पसंद था। पूरे क्षेत्र में कजरी के बोल पर हाथों में मेंहदी रचा कर झूला–झूलने की समृद्ध परम्परा थी। परंतु अब बागों में न झूले लगते हैं न ही कजरी गाती महिलाएं ही दिखती हैं।

भादो मास में कृष्ण पक्ष की तृतिया तिथि को कजरी तीज मनायी जाती है, जिसे कजली तीज भी कहते हैं। हरियाली तीज, हरतालिका तीज की कतर कजरी तीज भी सुहागिन महिलाओं के लिए अहम पर्व है, वैवाहिक जीवन की सुख और समृद्धि के लिए यह व्रत किया जाता है।

इस दिन सुहागिन महिलाएं पति की लंबी आयु के लिए व्रित रखती हैं, जबकि कुंवारी कन्याएं योग्य वर पाने के लिए यह व्रत करती हैं। जौ, गेहूं, चने और चावल के सत्तू में घी और मेवा मिलाकर तरह–तरह के पकवान बनाए जाते हैं। चंद्रोदय के बाद भोजन करके व्रत तोड़ते हैं। इस दिन आटे की सात लोइयां बना कर उनपर घी, गुड़ रखकर गाय को खिलाने के बाद भोजन किया जाता है। घर में झूले डाले जाते हैं और महिलाएं एकत्रित होकर नाचती गाती हैं। इस अवसर पर नीमड़ी माता की पूजा करने का विधान है।

Ramdeen Kumar

पूजन से पहले मिट्टी व गोबर से दीवार के सहारे एक तालाब जैसी आकृति बनायी जाती है। और उसके पास नीम की टहनी को रोप देते हैं, तालाब में कच्चा दूध और जल डालते हैं और किनारे पर एक दिया जलाकर रखते हैं। थाली में नीबू, ककड़ी, केला, सेब, सत्तू, रोली, मौली, अक्षत आदि रखे जाते हैं। फिर विधि–विधान से माता की पूजा की जाती है।

सखी हे पिया नहीं घर अयला,

मेघबा बरसन लागे.....

जौं हम जनितौं पिया नहि औता

रखितहुं हृदय लगाय

हमरा सें की त्रुटि भेल सखि

हे अबतक घर नहि आय

जौं जनितौं पिया एहन करता

दितियनि नहि हमज ाय

सखि हे पिया नहि घर अयला।

सखि हे सावन के बुन झीसी

पिया संग खेलु पचोसी ना

गोर बदन पर कारी चुनरिया

पतली कमरिया ना।

मुंह में पान नयन में काजर

Kundan Kumar

दांत में मिसिया ना।

गरा में नेकलेस हाथ में कंगन

पैर में पैजिनिया ना।

सखिया सावन में डर लागै

जियरा धड़–धड़ धड़कै ना।

श्याम घटा चहु ओर देखबय

बिजुली चमकै ना।

पिया मोर परदेश गेल

सुन सेजवा भावै ना।

झींगूर दादुर मोर पपिहरा

कोइली कुहकै ना।

सखिया सावन में डर लागै ना।

स्थानीय बुजुर्गों के अनुसार आजादी के पूर्व जमींदारों व राजाओं की हवेलियों में घरों की महिलाओं द्वारा मेंहदी मिलन का आयोजन किया जाता था। इस मिलन का विशेष महत्व इसलिए भी था कि इसमें आम लड़कियां तथा आमंत्रण पर अंग्रेजी मेम भी काफी उत्साह के साथ आकर हाथों में भारतीय महिलाओं की तरह मेंहदी रचवा कर कजरी का आनंद लेती थी।

अंग्रेजी मेम में थी कजरी के प्रति दिवानगीः अंग्रेज अफसरों के मेमों में भी कजरी और झूलों के प्रति काफी दिवानगी थी। उन्होंने सावन के महीने का इंतजार भी रहता था। भोजपुरी के

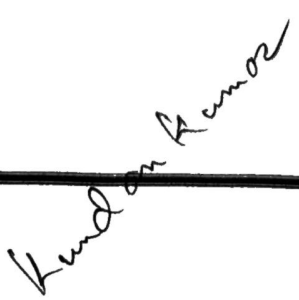

शेक्सपियर भिखारी ठाकुर ने एक रचित कजरी गीतों में हम भारतीय परंपरा के प्रति मेमों के भी दीवानगी को पिरोया है।

झूला–झूले मेम संगवा मोरी रे धनिया,

काले सावन में भावे झुल गईया,

बोल हो विदेशी चिरई बोल, कजरी गीत ने ख्याति प्राप्त की। इसी प्रकार महेन्द्र मिश्र ने

'तोहरे मेम गोरी गोरी झूलागईया पे गावे कजरी' सरीखे गीत काफी लोकप्रिय हुए।

विदेशियों की नजर में अनोखी थी परम्पराः ' द सर्वे ऑफ द डिस्ट्रिक्ट शाहाबाद' में फ्रांसिसी बुकानन ने सावन माह में झूले व कजरी का वर्णन किया है। उनके अनुसार यह संसार की अनोखी परम्परा है। भारतीय महिलाओं के साथ अंग्रेजों के गोरी मेमों के झूलने तथा उमंग भरे अल्हड़पन को संपूर्णता से परिपूर्ण व अनुपम संस्कृति बताया है। लोकप्रियता ऐसी थी कि 1808 में शाहाबाद के जोन कमांडर रहे लार्ड मैकाले की पत्नी लूसी लूप तक को सावन का बेसब्री से इंतजार रहता था।

झूला लागल कदम की डारी

देखा जाये तो अधिकांश लोकगीत किसी न किसी ऋतु या त्योहार के होते हैं। वर्षा ऋतु के आने पर लोगों के मन में जिस नये उल्लास व उमंग का संचार होता है, उस भाव की अभिव्यक्ति करती है–'कजरी'।

ऋतुगीतों की श्रेणी में वर्षा–गीत के अन्तर्गत सावन में गाया जाने वाला यह गीत विशेष लोकप्रिय है। इसका सम्बन्ध झूला से है। सावन में पेड़ों पर झूले पड़ जाते हैं पेड़ों की डालियों पर मजबूत डोर के सहारे पटरा लगाकर झूला तैयार किया जाता है।

कुछ युवतियां पटरे पर बैठती हैं और कुछ युवतियां पटरे के दोनों किनारों पर खड़े होकर झूले को पेंग मारती हैं और झूले को गति देती हैं। झूला झूलते समय युवतियां समवेत स्वर में उन्मुक्त भाव से कजरी गाती हैं। जब काले कजरारे बादल घिरे हो बरखा की भीनी–भीनी फुहार पड़ रही हो, पेड़ों पर झूले पड़े हों, मन उमंग से मदमस्त हो, ऐसे में भला मन की अभिव्यक्ति गीतों में कैसे नही उतरेगी। इन गीतों से और वर्षा ऋतु की हरियाली से वातावरण रोमांचित हो जाता है।

यहां कजरी तीज को कजरहवा ताल पर रातभर कजरी उत्सव होता है जिसे सुनने के लिए काफी संख्या में लोग एकत्रित होते हैं। आज विषय विविधता की अपार सम्भावना है। शायद ही जीवन का कोई ऐसा पक्ष होगा जिसका उल्लेख इन गीतों में नहीं हुआ है।

प्रतीक्षा, मिलन और विरह की अविरल सहेली, निर्मल और जज्जा से सजी–धजी नवयौवना की आसमान छूती खुशी, आदिकाल से कवियों की रचनाओं का श्रृंगार कर, उन्हें जीवंत करने वाली 'कजरी' सावन की हरियाली बहारों के साथ तेरा स्वागत है। मौसम और यौवन की महिमा का बखान करने के लिए परंपरागत लोकगीतों का भारतीय संस्कृति में कितना महत्व है– कजरी इसका उदाहरण है। प्रतीक्षा के पट खोलती लोकगीतों की श्रृंखलाएं इन खास दिनों में गजब सी हलचल पैदा करती हैं, हिलोर सी उठती है, श्रृंगार के लिए मन मचलता है और उस पर कजरी के समधुर बोल। सचमुच वह सबकी प्रतीक्षा है, जीवन की उमंग और आसमान को छूते झूलों की रफ्तार है। शहनाईयों की कर्णप्रिय गूंज है, सुर्ख लाल मखमली और हरियाली का गहना है, सावन से पहले ही तेरे आने का एहसास। महान कवियों और रचनाकारों ने तो कजरी के सम्मोहन की व्याख्या विशिष्ट शैली में की है।

लोकमानस के कंठ में श्रुतियों में और कई बार लिखित रूप में यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित होते रहते हैं। पंडित रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में ग्राम गीत की प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छंद नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री–पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति मानों गान करती है। प्रकृति का यह गान ही ग्राम गीत है। 'इस लोक संस्कृति का ही एक पहलू है–कजरी। ग्रामीण अंचलों में अभी भी प्रकृति की अनुपम छटा के बीच कजरी की धाराएं फूट पड़ती हैं। यहां तक कि जो अपनी मिट्‌टी छोड़कर विदेशों में बस गए, उन्हें भी कजरी अपनी ओर खींचती है, तभी तो कजरी अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि देशों में भी अपनी अनुगूंज छोड़ चुकी है। सावन के मतवाले मौसम में कजरी के बोलों की गूंज वैसे भी दूर–दूर तक जाती है।

रिमझिम बरसेले बदरिया,

गईयां गावेले कजरिया

मोर सवरिया भीजै न

वो ही धानियां की कियरिया

मोर संविरया भीजै न।

वस्तुतः लोकगीतों की रानी कजरी सिर्फ गायन भर नहीं है, बल्कि यह सावन के मौसम की सुन्दरता और उल्लास का उत्सवधर्मी पर्व है। चरक संहिता में तो यौवन की संरक्षा व सुरक्षा हेतु वसंत के बाद सावन महीने को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। सावन में नयी व्याही बेटियाँ अपने पीहर वापस आती हैं और बगीचों में भाभी और बचपन की सहेलियों के संग कजरी गाते हुए झूला झूलती हैं–

Kundan Kumar

घरवा में से निकले ननद–भउजईया

जुलम दोनों जोड़ी सांवरिया।

छेड़छाड़ भरे इस माहौल में जिन महिलाओं के पति बाहर गए होते हैं, वे भी विरह में तड़पकर गुनगुना उठती हैं, ताकि कजरी की गूंज उनके प्रीतम तक पहुंचे और शायद वे लौट आएं–

सावन बीत गयो मेरो रामा

नाहीं आयो सजनवा ना।

भादों मास पिया मोर नहीं आए

रतिया देखी सवनवा ना।

यही नहीं जिसके पति सेना में या बाहर परदेश में नौकरी करते हैं, घर लौटने पर उनके सांवले पड़े चेहरे को देखकर पत्नियां कजरी के बोलों में गाती हैं–

गौर–गौर गइले पिया

आयो हुईका करिया

नौकरिया पिया छोड़ दे ना।

सावन हे सखी सगरो सुहावन

रिमझिम बरसेला मेघ हे

सबके बलमउवा घर अइलन

हमरो बलम परदेस रे।

भारतीय परंपरा का प्रमुख आधार तत्व उसकी लोक संस्कृति है। ग्राम गीत की भारत में प्राचीन परंपरा रही है। भोजपुरी लोकगीतों के अन्तर्गत कजरी गीतों का विषय वैविध्य देखते ही

Kundan Kumar

बनता है। जीवन के कितना निकट है इसका प्रमाण हमें मिलता है। सामाजिक, धार्मिक विविधता का चित्रण, प्रकृति–चित्रण, राष्ट्र प्रेम, पर्यावरण, मंहगाई, नशाखोरी, सामाजिक बुराइयों के साथ ही संयोग वियोग का पक्ष, पीहर के प्रति प्रेम, परदेश गए पति की वेदना, हास–परिहास, झूला लगाने से झूला झूलने तक की बात, सखियों से ससुराल की चर्चा, गवना न कराये जाने का खेद भी प्रकट होता है। प्रेम का विशद् चित्रण के साथ–साथ नकारा, आवारा पति के कार्य व्यवहार के प्रति स्त्रियों के प्रतिरोधी स्वर भी इन गीतों में दिखाई देता है। इन सभी बातों का वर्णन कजरी गीतों को हृदयस्पर्शी बना देता है।

सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो परिवार के रिश्तों की खट्टी–मीठी नोकझोंक, पति–पत्नी का प्रेम, ननद–भौजाई व देवर का हास–परिहास, सब कुछ इन गीतों में देखने को मिलता है। प्रायः स्त्रियां सावन में अपने 'नईहर' आती हैं, झूला झूलती हैं सखियों के साथ कजरी गाती हैं। भाई भी अपनी बहन को लेने के लिए बहन के घर जाता है। परन्तु एक नवविवाहिता 'नईहर' जाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि वह सावन में अपने पति के संग रहना चाहती है, इसी भाव की अभिव्यक्ति इस कजरी में है।

सावन में जहाँ सभी स्त्रियां अपने नईहर जाती है ऐसे में भाई को वापस भेज देना, पति–पत्नी के प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। जहाँ प्रेम है वहीं दुःख भी है। पति के बिना सावन का महीना पत्नी के लिए असह्य पीड़ा भी देता है। इस कजरी में पत्नी का दुःख कैसे चित्रित है, देखिए–

"चढ़त सवनवा अईले मोरा ना सजनवा रामा

हरि–हरि दारून दुःख देला दुनों जोबनवा रे हरि.....

सोरहो सिंगार करिके पहिरो सब गहनवा रामा

Kundan Kumar

हरि हरि चितवत चितवत धुमिल भईल नयनवा रे हरि.....

साजी सुनी सेज तड़फत बीतल रयनवा रामा

हरि हरि बैरी नाहीं निकले मोर परनवा रे हरि.....

वहीं पत्नी के मायके अर्थात नईहर जाने पर पति के दुःख का उल्लेख भी कजरी गीतों में मिलता है–

"मोरी रनियां अकेला हमें छोड़ गयी

मोसे मुख मोड़ गयी ना.....

रहे हरदम उदास, लगे भूख ना पियास

मोरा नन्हा करेजा अब तोड़ गयी

मोसे मुख मोड़ गयी ना.....

वह न केवल दुःखी है बल्कि पत्नी के नईहर जाने पर उलाहना भी देता है। सावन के महीने में भला कौन पत्नी अपने पति को छोड़कर नईहर जायेगी? वह विवशता की अभिव्यक्ति –

हरे रामा सावन में संवरिया नईहर जाले रे हरी.....

जउ तुहु गोरिया हो जईबु नईहरवा हो रामा

हरे रामा केई मोरा जेवना बनईहे रे हरी.....

पत्नी भी पति से अपने नईहर आने को कहती हैं। अपने 'नईहर' का बखान भला कौन स्त्री नहीं करेगी। इस गीत में पति को आने के जिस भाव से वह कहती है निश्चय ही उसमें गर्व का भाव निहित है।

राजा एक दिन अईत अपने ससुरार मेंकृ

सावन के बहार में ना.....

जेवना भाभी से बनवईती,

अपने हाथ से जेवइति,

झूला डाल देती नेबुला अनार में

सावन के बहार में ना.....

सावन में पुरूष कजरी गायन मंडली जिले के अन्य हिस्सों में भी लोगों को अपने गीतों से मंत्रमुग्ध कर देते थे। लेकिन अब यह सब समाप्त हो चुका है। पहले सावन के महीने में कजरी को गाकर उनकी गायन मंडली अच्छा पैसा कमा लेती थी, लेकिन अब कजरी के शौकीन लोग नहीं रहे। इसके सहारे बैठने से दाल रोटी नहीं चल सकती। आजकल कजरी के गायक कलाकार दो जून की रोटी के जुगाड़ में अन्य कामों में व्यस्त रहते हैं।

ऐसे में क्या कल्पना कर सकते हैं कि हम अपनी पुरानी परंपराओं को बचा पाएंगे। कजरी लोकगीतों की धरोहर है। कुछ वर्षों तक कजरी गाने वाले कलाकार जिले में मौजूद थे, लेकिन अब इनकी संख्या गिनी चुनी रह गई है। सरकार को लोक कलाओं के संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए, जिससे लोक संस्कृति और परंपराएं जीवित रह सकें।

ऋतु प्रधान लोक–गायन की शैली कजरी का फ़िल्मों में भी प्रयोग किया गया है। हिन्दी फ़िल्मों में कजरी का मौलिक रूप कम मिलता है, किन्तु 1963 में प्रदर्शित भोजपुरी फिल्म 'बिदेसिया' में इस शैली का अत्यन्त मौलिक रूप प्रयोग किया गया। इस कजरी गीत की रचना अपने समय में जाने–माने लोक गीतकार राममूर्ति चतुर्वेदी ने की थी और इसे संगीतबद्ध किया एस0एन0 त्रिपाठी ने। यह गीत महिलाओं द्वारा समूह में गायी जाने वाली 'ढुनमुनियाँ कजरी' शैली में मौलिकता को बरकरार रखते हुए प्रस्तुत किया गया। इस कजरी

Kundan Kumar

गीत को गायिका गीता दत्त और कौमुदी मजुमदार ने अपने स्वरों में फ़िल्मों में कजरी के प्रयोग को मौलिक स्वरूप प्रदान किया था।

एक ओर जहां सावन शिव आराधाना से जुड़ा है वहीं इसे सृष्टि, स्त्री और प्रकृति का महीना भी कहते हैं। ज्ञानीजन तो यहां तक कहते हैं कि भले ही बसंत को ऋतुओं का राजा कहते हों, लेकिन मौसम की रानी तो सावन ही है। सावन के मेघ पर ही बसंत के उल्लास और रंग का भविष्य टिका होता है। ऐसे में सावन में महिलाओं की बात न हो अटपटा सा लगता है।

शास्त्रों में महिलाओं को भी प्रकृति का रूप माना गया है। इस मौसम में बरसात की बूंदों की प्रकृति खिल उठती है और हर तरफ हरियाली छाई रहती है। सावन महीना शुरू होते ही सुहागिन महिलाओं पर सावन का रंग चढ़ना शुरू हो जाता है और वे विशेष तौर पर साज–श्रृंगार करती हैं। सावन महीने में महिलाओं के लिए हरे रंग का विशेष महत्व होता है। कहा जाता है हरी चूड़ियां महिला के सुहाग का प्रतीक है। चूंकि इस महीने में भगवान शिव का पूजन होता है इसलिए महिलाएं हरे रंग की चूड़ियां पहनती हैं जिससे उन्हें भगवान शिव का विशेष आशीर्वाद मिले। भगवान शिव प्रकृति के बीच रहते हैं और उन्हें हरे रंग का बेलपत्र और धतूरा भी चढ़ाया जाता है जिससे वे खुश होते हैं। इसी तरह वे लोक जीवन में शिव–शक्ति दाम्पत्य जीवन के आदर्श भी हैं। लोग मानते हैं कि सावन के महीने में हरे रंग का वस्त्र धारण करने से सौभाग्य में वृद्धि होती है और पति–पत्नी के बीच स्नेह बढ़ता है। हरा रंग उर्वरा का प्रतीक माना जाता है। सावन के महीने में प्रकृति में हुए बदलाव से हार्मोन्स में भी बदलाव होते हैं जिसका प्रभाव शरीर और मन पर पड़ता है जो स्त्री पुरूषों के प्रेम को बढ़ाता है। सावन में मेंहदी लगाने का वैज्ञानिक कारण भी यही माना जाता है। दूसरी ओर इस महीने में कई प्रकार की बीमारियां फैलने लगती हैं और

आयुर्वेद में हरा रंग कई रोगों के रोक–थाम में कारगर माना गया है।

सावन व स्त्रियों को लेकर साहित्यकारों ने अनेक रचनाएं की हैं। मालव भूमि के प्रसिद्ध साहित्य चितेरे और दूसरा सप्तक के कवि श्री नरेश मेहता ने अपने उत्तर कथा उपन्यास में श्रावण महीना व स्त्रियों के भावभूमि की एक सरस व मनोरम रेखचित्र खींचा है। जरा सुनिएः

"स्त्रियां हैं कि वर्षा थोड़ी सी रिमझिम हुई और निकल पड़ीं गांव के बाहर जिस आम या पीपल या नीम की शाखा थोड़ी नीचे हुई उसी पर रस्सी का झूला डाला और हिचकोले लेने लगीं और कहीं दो–चार हुई तो रस्सी में पट्टियां फंसाया और दोनों ओर सखियां खड़ी हो गईं। कैसे हुमस–हुमस कर पेंगें बढाई जा रही हैं। बाल हवा के साथ छितरे पड़ रहे हैं। पल्लू का पता ही नहीं चल रहा है। रिमझिम में सारा मुंह कैसा छिंटा पड़ रहा है जैसे कोई दूध की धार मुंह पर छींट रहा हो। झूले के साथ देह और देह के साथ हीरा मन भी कैसे नीचे–ऊपर आ जा रहा है। जल को ठेलने की तरह हवा को भी ठेलते हुए ऊपर जाते समय सीने पर कैसा मीठा–मीठा सा दबाव लगता है, जैसे किसी का हाथ हो– किसका? हिश्ट!! पर लौटते में पैरों के बीच से उड़ते लुगडे के बीच से हवा की लकीर कौसी ठंडी–ठंडी सी पिंडलियों को जांघों को थरथरा देती है। कमर तक सब सुन्न सा पड़ जाता है जैसे रस्सी नहीं थामों तो बस अभी चू ही पड़ेंगे। और इस उब–चुभ में मन का रसिया हीरामन न जाने कितने नदी–नाले, गांव–कांकड़ संबंधों के औचित्य–अनौचित्य को लांघकर कैसे–सपने देखने लगता है कि किसी को उनकी जरा सी भनक या आहट हो जाए तो फिर कुंए में ही फांदना पड़े। गीत की एक हिलोर ऊपर से नीचे को आती है और हवा के दबाव में कैसे थरथराती ऊपर चली जाती है–चलो रे

Kundan Kumar

गामड़े मालवे!!! झूले की यह उपकरणहीन मन की उत्सवता अर्धचंद्राकार स्थिति में आती है, फिर ऊपर आकाश में फिर कैसे पलटती है। ऐसी उत्सवता में सारे वन–प्रांतर, नदी–नाले, वनराजियां, पशु–पक्षी सभी तो रानी कंठ की इस आकुल रसमयता में अभिषेकित हो जाते है। मनुष्य की यह कैसी उत्सव–सुगंध है जिससे समय की देह भी सुवासित लगती है। श्रावण में अरण्य की भांति आकंठ भीगना और क्या होता है?

सावन को लोकगीतों का महीना भी कहते हैं। लोकगीतों की दृष्टि से देखें तो कोई एक महीना ऐसा नहीं हे, जिसमें इतने तरीके के गीत गाए जाने का चलन रहा हो। अब अगर इसे लोकगीतों की दृष्टि से देखें तो एक मास के सावन में गीतों की विविधता है। शुरूआत खेती के गीतों से होती है, क्योंकि यह रोपनी का मौसम होता है। फिर सावन शुरू होते ही शिव का गीत गाया जाने लगता है। कजरी और झूला गीत तो इसकी पहचान में शामिल है ही।

सावन का सुहाना माह। मैदानों में बिछी गुदगुदाने वाली हरी मखमली घास। खेतों और बगीचों में भी बस हरीतिमा। आसमान में उमड़ते–घुमड़ते कजरारे बादलों की अनुपम छटा। मयूरों का नर्तन। बालू में नहाती हुई चिड़ियों का कलरव। सावन के झूले में झूलती हुई ललनाएं और पेंग बढ़ाते हुए ग्रामीण सुकुमार। तभी रिमझिम बारिश की झड़ी लग जाती है और अधरों पर रसीली कजरी के मधुर स्वर फूट पड़ते हैं–

झूला लागल कदम की डारी

झूलें कृष्ण मुरारी ना

राधा झूलें कान्ह झुलावें

पारी पारी ना

गाँव की सोंधी माटी और लोक जीवन से जिनका जरा भी संबंध है, वे कजरी के इन रसमय आंचलिक गीतों को सुनते ही भाव विह्वल होकर झूम उठते हैं। कजरी में संयोग श्रृंगार की प्रधानता पाई जाती है। विरहणी की विरह वेदना भी इन गीतों में मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त की गई है। कुछ लोग कजरी की उत्पत्ति का स्रोत कजरारे बादलों को मानते हैं। भरतेंदु हरिश्चंद्र ने कजरी के मूल में तीन कारण गिनाए हैं।

सावन–भादों के शुक्लपक्ष की तीज के दिन, जिसे कजली तीज कहा जाता है, गाये जानेवाले गीत को कजली अथवा कजरी कहा गया। कजली तीज के रोज जी भर कजरी गाने–गवाने की परंपरा अब भी जीवित है।

कजरी और झूला, दोनों एक दूसरे के पूरक लगते हैं। सावन में स्त्री–पुरूष को कौन कहे, मंदिर में भगवान को भी झूले में बिठाकर झुलाया जाता है। भक्तों की भीड़ इस 'झूलन' को देखने के लिए उमड़ पड़ती है और वे झूले में झूलते भगवान के दर्शन कर उन्हें झूम–झूमकर मनभावनी कजरी सुनाते हैं। यों तो कजरी लगभग पूरे देश में विभिन्न रूपों में गायी जाती है, पर उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर और वाराणसी की कजरी की कजरी को काफी लोकप्रियता हासिल है। कहा भी गया है कि रामनगर की रामलीला और मिर्जापुर की कजरी सर्वश्रेष्ठ है।

लीला रामनगर की भारी

कजरी मिर्जापुर सरदार

मिथिला में सावनी माह में हिंडोले पर बैठकर नर–नारी मल्हार के गीत गाते हैं। राजस्थान में तीज के अवसर पर गाए जानेवाले हिंडोले के गीत भी कजरी की ही कोटि में आते हैं।

Kundan Kumar

अगर मन के मीत साथ–साथ हों तो कजरी गाने गाने का आनंद ही कुछ और है। राधा–कृष्ण की रासलीला को माध्यम बनाकर नायिका अपनी सहेलियों के साथ ढोलक पर थाप दे–देकर अपने चितचोर को सुनाते हुए गा उठती हैं–

कान्हा हँसि–हँसी बोली बोलड़

उ तो करइ ठिठोली ना

राहे–बाटे बहियां मरोड़ी

उ तो करइ मचोली न

असगर बाके मिल कुंजन में

उ तो रोकड़ टोली ना

ग्वाल–बाल संग खाये–लुटाये उ तो दही मटकोली ना

सिर्फ इतना ही नही, रसिया कृष्ण ने महिला भेष बनाकर चूड़ियों का टोकरा सिर पर रखा और चल पड़े राधा तथा गोपियों को चूड़ी पहनाने।

हरि–हरि कृष्ण बनेले मनिहारिन,

पहिन के साड़ी रे हरी,

हम कई जिले गए। यात्रा के दौरान काफी परेशानियां भी हुईं। खासकर कलाकारों से मुलाकात करने में। हमारे लिस्ट से बाहर भी कई लोकगायक हैं जिनसे हमारी मुलाकात नहीं हो पायी। हमने कोशिश की लेकिन उनकी व्यस्तता की वजह से हमारी मुलाकात नहीं हो पायी।

भ्रमण के बाद लगा की कजरी की परंपरा को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। कजरी अब लुप्त होती जा रही है। कजरी को

Kundan Kumar

बढ़ावा देने के लिए कजरी गायन का कार्यक्रम अगर सतत रूप से हो तो कजरी के गायक कलाकार फिर से सक्रिय होंगे। सरकार की कयी योजना जो कलाकारों के लिए है उन कलाकारों तक नहीं पहुँच पाती जो इस तरह की विलुप्त होती परंपरा को संजोने का कार्य करते हैं और सुदूर गाँवों में रहते हैं।

अन्त में हम संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली का धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने मुझे इस कार्य का अवसर दिया। साथ ही विप्लवी पुस्तकालय, गोदरगांवा, बेगूसराय, सांस्कृतिक विकास केन्द्र, बेगूसराय, रंगकर्मी अमित रौशन, बेगूसराय, अबधेश पासवान, डॉ0 पुष्पा प्रसाद, मुजफ्फरपुर, राजू रंजन, मकसूदन कुमार, श्री अनिल पतंग, आदि का भी आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने कजरी के डाटा क्रिएशन में हमारी मदद की।

कुन्दन कुमार
बन्देहरा, जिला–खगड़िया,
वाया–महदि्दपुर
पिन–851212
बिहार

कजरी

(लोक संस्कृति)

भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं
परम्पराओं के संरक्षण की योजना
(संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली)

कुन्दन कुमार
बेगूसराय, बिहार।
मो.–09199835674
Email- kkp9079@gmail.com

अनुक्रम

बिहार में कजरी	–	1
कजरी का विवरण	–	1
कजरी का परिचय	–	7
कजरी की श्रृंगारिकता	–	12
परंपरा एवं उत्सव	–	15
कजरी के भविष्य को खतरे	–	16
कजरी के संरक्षण के उपाय	–	17
कजरी के संरक्षण के लिए लोगों की सहभागिता	–	18
कजरी गीत/गाने	–	19

बिहार में कजरी

कजरी यों तो पूरे पूर्वी उत्तर प्रदेश का लोकगीत है, किंतु मिर्जापुर, बनारस और जौनपुर में इसकी विशिष्ट शैलियां विकसित हुईं, जो आज भी विद्मान हैं। एक बड़ी पुरानी लोकोक्ति है– लीला राम नगर के भारी, कजरी मिर्जापुर सरनाम। इस लोकोक्ति से कजरी और मिर्जापुर का संबंध स्वतः स्पष्ट है। कजरी की जन्म स्थली मिर्जापुर ही है। कजरी गीतों के जन्मदाता के रूप में मध्य भारत के राजा दानों राय का नाम लिया जाता है। उन्होंने कज्जला देवी (विंध्याचलदेवी) की स्तुति के रूप में कजरी गीतों का आविष्कार किया। एक अन्य मान्यता के अनुसार दानों राय की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी सती हो गई थीं, उस समय की महिलाओं ने अपना दुःख व्यक्त करने के लिए एक नये राग में जिस गीत की रचना की वही कजरी है। बिहार के बेगूसराय, मधुबनी, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, आरा, रोहतास, बक्सर, सुपौल, सहरसा एवं बिहार के लगभग सभी जिले में कजरी किसी न किसी रूप में गायी जाती है। एशिया महादेश में भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि राज्यों में कजरी गायी जाती है।

कजरी का विवरण

कजरी गायन का आरंभ ज्येष्ठ मास के गंगा दशहरा से होता है। तीन मास तेरह दिन तक कजरी गाने का विधान है। गंगा दशहरा से आरंभ होनेवाली यह गायन परंपरा नागपंचमी से लेकर कजरी तीज तक अपने चरमोत्कर्ष पर रहती है। मिर्जापुर और बनारस की कजरी में शैली का अंतर स्पष्ट प्रतीत होता है। यद्पि कजरी की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। फिर भी इस बात पर सभी एकमत हैं कि कजरी का प्रचलन मिर्जापुर से ही बढ़ा। कजरी गायन क्षेत्र से जुड़े लोगों का मानना है कि कजरी का मायका मिर्जापुर और ससुराल बनारस में है। भारत की लोक संस्कृति का परंपराओं से गहरा और अटूट रिश्ता है। कजरी सिर्फ गाई नहीं जाती बल्कि खेली भी जाती है। एक तरफ जहाँ मंच पर लोक गायक इसकी अद्भुत प्रस्तुति करते हैं वहीं दूसरी ओर इसकी सर्वाधिक विशिष्ट शैली ढुनमुनिया है

जिसमें महिलायें झुक कर एक दूसरे से जुड़ी हुयी अर्धवृत्त में नृत्य करती हैं।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ अंचलों में तो रक्षाबन्धन पर्व को कजरी पूर्णिमा के तौर पर भी मनाया जाता है। मानसून की समाप्ति को दर्शाता यह पर्व श्रावण अमावस्या के नवें दिन से आरम्भ होता है,जिसे कजरी नवमी के नाम से जाना जाता है। कजरी नवमी से लेकर कजरी पूर्णिमा तक चलने वाले इस उत्सव में नवमी के दिन महिलायें खेतों से मिट्टी सहित फसल के अंश लाकर घरों में रखती हैं एवं उसके साथ सात दिनों तक माँ भगवती के साथ कजमल देवी की पूजा करती हैं। घर को खूब साफ–सुथरा कर रंगोली बनायी जाती है और पूर्णिमा की शाम को महिलायें समूह बनाकर पूजी जाने वाली फसल को लेकर नजदीक के तालाब या नदी पर जाती हैं और उस फसल के बर्तन से एक दूसरे पर पानी उलीचती हुई कजरी गाती हैं। इस उत्सवधर्मिता के माहौल में कजरी के गीत सातों दिन अनवरत् गाये जाते हैं।

सावन के महीने को छोड़कर अन्य कई सामाजिक एवं त्योहारों के अवसर पर भी लोग इसे गाते हैं। इसका चलन कबसे चला आ रहा है ये बताना कठिन प्रतीत होता है। लेकिन खुशी के मौके पर, शादी, बच्चे के जन्म के अवसर पर, मांगलिक कार्यों आदि के अवसर पर भी लोग इसे गाते हैं।

सावन भादों के कृष्णपक्ष की तीज के दिन जिसे कजली तीज कहा जाता है, गाये जाने वाले गीत को कजली अथवा कजरी कहा गया। कजली तीज के रोज जी भर कजरी गाने गवाने की परंपरा अब भी जीवित है।

कजरी और झूला दोनों एक दूसरे के पूरक से लगते हैं। सावन में स्त्री–पुरूष को कौन कहे मंदिर में भगवान को भी झूले में बिठाकर झुलाया जाता है। भक्तों की भीड़ इस झूलन को देखने के लिए उमड़ पड़ती है और वे झूले में झूलते भगवान के दर्शन कर उन्हें झूम–झूमकर मनभावनी कजरी सुनाते हैं। यों तो कजरी लगभग पूरे देश में विभिन्न रूपों में गायी जाती है,

पर उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर और वाराणसी की कजरी को काफी लोक प्रियता हासिल है।

विन्ध्य क्षेत्र में पारम्परिक कजरी धुनों में झूला झूलती और सावन भादों मास में रात में चौपालों में जाकर स्त्रियाँ उत्सव मनाती हैं। इस कजरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती हैं और इसकी धुनों व पद्धति को नहीं बदला जाता। कजरी गीतों की ही तरह विन्ध्य क्षेत्र में कजरी अखाड़ों की भी अनूठी परम्परा रही है। आषाढ़ पूर्णिया के दिन गुरू पूजन के बाद इन आखाड़ों से कजरी का विधिवत गायन आरम्भ होता है। स्वस्थ परम्परा के तहत इन कजरी अखाड़ों में प्रतिद्वन्दता भी होती है। कजरी लेखक गुरू अपनी कजरी को एक रजिस्टर पर नोट कर देता है, जिसे किसी भी हालत में न तो सार्वजनिक किया जाता है और न ही किसी को लिखित रूप में दिया जाता है।

वस्तुतः लोकगीतों की रानी कजरी सिर्फ गायन भर नहीं है बल्कि यह सावन मौसम की सुन्दरता और उल्लास का उत्सवधर्मी पर्व है। चरक संहिता में तो यौवन की संरक्षा व सुरक्षा हेतु बसन्त के बाद सावन महीने को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। सावन में नयी ब्याही बेटियाँ अपने पीहर वापस आती हैं और बगीचों में भाभी और बचपन की सहेलियों संग कजरी गाते हुए झूला झूलती हैं–

घरवा में से निकले ननद भउजइया,
जुलम दोनों जोड़ी साँवरिया।

छेड़छाड़ भरे इस माहौल में जिन महिलाओं के पति बाहर गये होते हैं, वे भी विरह में तड़पकर गुनगुना उठती हैं ताकि कजरी की गूँज उनके प्रीतम तक पहुँचे और शायद वे लौट आयें–

सावन बीत गयो मेरो रामा, नाहीं आयो सजनवा ना।

.....

भादों मास पिया मोर नहरीं आये, रतिया देखी सवनवा ना।

यही नहीं जिसके पति सेना में या बाहर परदेश में नौकरी करते हैं, घर लौटने पर उनके सांवले पड़े चेहरे को देखकर पत्नियाँ कजरी के बोलों में गाती हैं–

गौर–गौर गइले पिया, आयो हुई के करिया।
नौकरिया पिया छोड़ दे ना।

एक मान्यता के अनुसार पति विरह में पत्नियाँ देवी कजमल के चरणों में रोते हुए गाती हैं, वही गान कजरी के रूप में प्रसिद्ध हैं–

सावन हे सखी सगरो सुहावन,
रिमझिम बरसेला मेघ हे
सबके बलमउवा घर अइलन,
हमरो बलम परदेस रे।

नगरीय सभ्यता में पले–बसे लोग भले ही अपनी सुरीली धरोहरों से दूर होते जा रहे हों, परन्तु शास्त्रीय व उपशास्त्रीय बंदिशों से रची कजरी अभी भी उत्तर प्रदेश के कुछ अंचलों की खास लोक संगीत विधा है। कजरी के मूलतः तीन रूप हैं– बनारसी, मिर्जापुरी और गोरखपुरी कजरी। बनारसी कजरी अपने अक्खड़पन और बिन्दास बोलों की वजह से अलग पहचानी जाती है। इसके बोलों में अइले, गइले जैसे शब्दों का बखूबी उपयोग होता है, इसकी सबसे बड़ी पहचान 'न' की टेक होती है–

बीरन भइया अइले अनवइया,
सवनवा में ना जइबे ननदी।

.....

रिमझिम पड़ेला फुहार,
बदरिया आइ गइले ननदी।

विन्ध्य क्षेत्र में गायी जाने वाली मिर्जापुरी कजरी की अपनी अलग पहचान है। अपनी अनूठी सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण मशहूर मिर्जापुरी कजरी को ही ज्यादातर मंचीय गायक गाना पसन्द करते हैं। इसमें सखी–सहेलियों, भाभी–ननद के आपसी रिश्तों की मिठास और छेड़–छाड़ के साथ सावन की मस्ती का रंग घुला होता है–

पिया सड़िया लिया दा मिर्जापुरी पिया, रंग रहे कपूरी पिया ना
जबसे साड़ी ना लिअइबा, तबसे जेवना ना बनइबे
तोरे जेवना पे लगिहैं मजूरी पिया, रंग रहे कपूरी पिया ना।

केवल अखाड़े का गायक ही इसे याद करके या पढ़कर गा सकता है–

कइसे खेलन जइबू, सावन में कजरिया,
बदरिया घिर आइल ननदी
संग में सखी न सहेली कइसे जइबू तू अकेली,
गुंडा घेर लीहें तोहरी डगरिया।

बनारसी और मिर्जापुरी कजरी से परे गोरखपुरी कजरी की अपनी अलग ही टेक है और यह 'हरे रामा' और ऐ हारी के कारण अन्य कजरी से अलग पहचानी जाती है–

हरे रामा, कृष्ण बने मनिहारी,
पहिर के सारी, ऐ हारी।

सावन की अनुभूति के बीच भला किसका मन प्रिय मिलन हेतु न तड़पेगा, फिर वह चाहे चन्द्रमा ही क्यों न हो–

चन्दा छिपे चाहे बदरी मा,
जब से लगा सवनवा ना।

विरह के बाद संयोग की अनुभूति से तड़प और बेकरारी भी बढ़ती जाती है। फिर यही तो समय होता है इतराने का, फरमाइशें पूरी करवाने का–

पिया मेंहदी लिआय दा मोतीझील से,
जायके साइकील से ना
पिया मेंहदी लिअहिया,
छोटकी ननदी से पिसइहा
अपने हाथ से लगाय दा कांटा–कील से,
जायके साइकील से.....
धोतिया लइदे बलम कलकतिया,
जिसमें हरी–हरी पतियां।

ऐसा नहीं है कि कजरी सिर्फ बनारस, मिर्जापुर और गोरखपुर के अंचलों तक ही सीमित है बल्कि इलाहाबाद और अवध अंचल भी इसकी सुमधुरता से अछूते नहीं हैं।

कजरी लोक संस्कृति की जड़ है और यदि हमें लोक जीवन की ऊर्जा और रंगत बनाये रखना है तो इन तत्वों को सहेज कर रखना होगा। कजरी भले ही पावस गीत के रूप में गायी जाती हो पर लोक रंजन के साथ ही इसने लोक जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक चेतना की अलख जगाने का भी कार्य किया है। कजरी सिर्फ राग विराग या श्रृंगार और विरह के लोक गीतों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें चर्चित समसामयिक विषयों की भी गूंज सुनायी देती है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कजरी ने लोक चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया। आजादी की लड़ाई के दौर में एक कजरी के बोलों की रंगत देखें–

केतने गोली खाइके मरिगै,
केतने दामन फांसी चढ़िगै
केतने पीसत होइहें जेल मां चकरिया,
बदरिया घेरि आई ननदी।

1857 की क्रान्ति के पश्चात् जिन जीवित लोगों से अंग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हें कालापानी की सजा दे दी गई। अपने पति को कालापानी भेजे जाने पर एक महिला कजरी के बोलों में गाती हैं–

अरे रामा नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी,
सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा
नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी,
घरवा में रोवै नागर, माई और बहिनियां रामा
सेजिया पै रोवे बारी धनिया रे हरी।

स्वतंत्रता की लड़ाई में हर कोई चाहता था कि उसके घर के लोग भी इस संग्राम में अपनी आहुति दें। ऐसे में उन नौजवानों को जो घर में बैठे थे, महिलाओं ने कजरी के माध्यम से व्यंग कसते हुए प्रेरित किया–

लागे सरम लाज घर में बैठ जाहु,
मरद से बनिके लुगइया आए हरि
पहिरि के साड़ी, चूड़ी, मुंहवा छिपाई लेहु,
राखि लेइ तोहरी पगरइया आए हरि।

कजरी का परिचय

भारतीय परम्परा का प्रमुख आधार तत्व उसकी लोक संस्कृति है। शहरी क्षेत्रों में भले ही संस्कृति के नाम पर फिल्मी गानों की धुन बजती हो, पर ग्रामीण अंचलों में अभी भी प्रकृति की अनुपम छटा के बीच लोक रंगत की धारायें समवेत फूट पड़ती हैं। विदेशों में बसे भारतीयों को अभी भी कजरी के बोल सुहाने लगते हैं, तभी तो कजरी अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि देशों में भी अपनी अनुगूँज छोड़ चुकी है। गाँव की सोंधी सोंधी माटी और लोक जीवन से जिनका जरा भी संबंध है, वे कजरी के इन रसमय आंचलिक गीतों को सुनते ही भाव विह्वल होकर झूम उठते हैं। कजरी में संयोग श्रृंगार की प्रधानता पायी जाती है। विरहणी की विरह वेदना भी इन गीतों में मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त की गई है। कुछ लोग कजरी की

उत्पत्ति का स्रोत कजरारे बादलों को मानते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कजरी के मूल में तीन कारण गिनाये हैं। सावन के मतवाले मौसम में कजरी के बोलों की गूंज वैसे भी दूर–दूर तक सुनाई देती है।

वर्षा ऋतु का शुभारंभ सिर्फ ग्रीष्म की तपती धारा को ही नहीं सारे जीव जंतुओं को शीतलता देता है। मोर पंख खोलकर नाचने लगता है भला तरूणियों के हृदय में हिलोरें क्यों नहीं उठें। वे नृत्यों एवं गीतों में बिभोर हो जाती हैं। वर्षा की प्रथम बूंद के साथ ही गीतों की स्वर लहरियां वातावरण में रंग बिखेर देती हैं। इस पावस गीतों को ही कजरी नाम से जाना जाता है। इन गीतों का जन्म मिर्जापुर में हुआ। कजरी गीतों में आमलोगों की भावनाएं भी शामिल हैं। मानसून के आने से गर्मी से तो निजात मिलती ही है यह एक नये जीवन की शुरूआत का प्रतीक है।

कजरी या कजली गीतों के जन्म को लेकर अनेक मान्यतायें चली आ रही हैं। कजरी पर कई दंत कथाएं भी हैं। ये दंत कथाएं इस प्रकार हैं–

1) कहा जाता है कि एक छोटे राजा की पुत्री कजली ने अपने पति के वियोग में जिन विरह गीतों की रचना की उसे ही कजरी के नाम से जाना गया है।
2) मिर्जापुर में विंध्याचल के दक्षिण पश्चिम दिशा में एक अष्टभुजा देवी का मंदिर है। अष्टभुजा देवी को यशोदा के गर्भ से उत्पन्न पुत्री बताया जाता है जिसे कंस ने देवकी वासुदेव की आठवीं संतान समझ पत्थर पर पटकने का असफल प्रयास किया था। वह बालिका आकाश मार्ग से उड़कर अष्टभुजा पहाड़ पर जा कर शक्ति के रूप में स्थापित हुई। वह यौवनावस्था को प्राप्त कर काम से पीड़ित हो इधर उधर भटकने लगती थी तथा जो भी मिलता उसे शाप दे देती थी। एक गायक ने उस देवी को एक गीत गा कर सुनाया जो देवी को बहुत पसंद आया। इस तरह के गीत अन्य लोगों ने भी गाये जिनसे कज्जला देवी प्रसन्न होती थी। इसे कजरी कहा गया।
3) मध्य भारत में सबसे लोकप्रिय राजा दादूराय की मृत्यु तथा रानी नागमती के सती हो जाने पर राज्य की शोकसंतप्त जनता ने अपनी वेदना की व्यंजना के लिए कजरी नामक नए राग को जन्म दिया, जिसे आगे चलकर काफी लोकप्रियता हासिल हुई। दादूराय के राज्य

में कजली नामक वन की खूबसूरती के कारण इन गीतों को कजली और आगे चल कर कजरी नाम दिया गया।

4) उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर शहर में कजरी नामक एक महिला रहती थी। उसका पति रूपये कमाने के लिए हजारों मील दूर परदेस गया था। न जाने कितने ही मौसम बीत गये लेकिन उसने घर की सुधि नहीं ली। एक साल बरसात के मौसम में पत्नी अपने पति की याद में गाने लगी। गीतों का यही रूप कजरी के नाम से मशहूर हुआ।

कजरी संगीत की ऐसी विधा है जो दुख को भी सुख में बदल देती है। बरसात के दिनों में मिर्जापुर और आसपास के क्षेत्रों कई जगह मेले लगाये जाते हैं जगह जगह अखाड़े भी लागाये जाते हैं इन मेलों में गाये जाने वाले कजरी गीतों से युवतियों का उल्लास गूँजता है। कालांतर में यह गीत मध्य प्रदेश एवं बिहार में भी काफी प्रचलित हुए। ये कभी वर्षा के फुहार के साथ मकान, बाग–बगीचे, राहों–चारागाहों और हरे–भरे खेतों तक गूँजते हैं तो कभी झूलों पर तो कभी मचानों पर तो कभी हरी–भरी धरती के पटल पर।

ग्रामीण क्षेत्रों में किसान खेती के लिए वर्षा ऋतु पर निर्भर हैं। बरसात आने के बाद खेतों की जुताई और फसलों की बुआई का काम शुरू होता है। जिससे यह उत्सव का समय होता है। लेकिन जिन महिलाओं के पति उत्सव के इस माहौल में साथ नहीं होते वे अपना अकेलापन दूर करने के लिए कजरी का सहारा लेती हैं। कजरी की तान पर झूमती हैं गाँव की रमणियां और जवान हृदय और इनकी खुशी में बच्चों और बूढ़ों के दिल भी शामिल होते हैं।

झूले पर जब किशोरियाँ गाती हैं तब उनके अन्दर का उल्लास गीतों में ढलकर छलक पड़ता है।

मिथिलांचल की कजरी इस प्रकार हैं–

खल खल इंजोरिया सखी है निरमल हे रतिया
हे निरमल है रतिया जमुना तीरे.....
झूला झूलै छैरे सांवरिया यमुना तीरे.....

फिर भोजपुर या उत्तर प्रदेश या तरूणियों के मनोभाव कजरी में इस तरह अभिव्यक्त होते हैं–

घिरी कारियारिया पुरबवा में नदिया के पार सखीया
आबे उड़ते उड़त बनबकुलाक दुधिया कतार सखिया
झेलुझा झकोरेला रहि रहि डोलेला जियरा हमार सखिया
जइसे रहि रहि रसे रसे नदिया में डोले सवार सखिया।

जब आकाश बादलों से आच्छादित हो जाता है तो नायिका को विरह वेदना और सताती है वह दादुर, मोर, कोयल आदि का गान सुनकर उन्मत्त सी हो जाती है और उसकी विरह वेदना कजरी के बोलों में फूट पड़ती है।

बदरा उमड़ि घुमरी घन गरजय
बुंदिया बरसन लागी न
बदरा.....
दादुर मोर पपीहा गावय
जिया उमतावय ना हो जिया उमतावय ना
बदरा.....

अब रिमझिम फुहार बरसने लगी। सावन की छटा और निराली हुई। मगर इन फुहारों के साथ भी नायक नहीं आया। मिलन की बाट जोहते विकल नैन प्यासे ही रहे। जुदाई का यह दर्द कजरी में उभरा–

नाहीं आइले बिरना तोहार हो
सवनमा आई गइले ननदी
रसे रसे छलकेला रस के गगरिया
सवनमा आइ गइले ननदी

विरह ही नहीं मिलन में कभी कभी नोंक झोंक में भी कजरी तान ने अपना स्थान बनाया है।

फागुन मास धानि हहरो फगुअवा
तु हमे छोड़ि गइलू हो नइहरवा
सावन मास धानि तोहरि कजरिया
ता तोहि छोड़ि जाइवे हो विदेसवा

कजरी गान तरूणियां अपने घरों से निकल कर पास की गली तथा बाग बगीचे में जाती है और इस तरह अपनी सुध–बुध खो देती हैं कि कभी झुमका कभी नकबेसर खो जाता है। घर आते ही परिवार वालों की प्रताड़ना सहनी पड़ती है।

बागों में फूलों की शोभा न्यारी है लेकिन जब अपना दिल ही उदास हो पिया नहीं पास हो तो उन फूलों के सौन्दर्य से भी ईर्ष्या का होना स्वभाविक है।

बेला फुलेला अधराति भिनुसुरवा हे हरी
फुलवा लोढन गइलुं, तोहिरे फुलबगिया में रामा
अरे रामा आई गइली पिया के सुरतिया हे हरी
चुनि–चुनि कलियां मैं गजरा बनबलेऊं रामा
अरे रामा ककरे गरवा डारौं पिया घर नाहीं हे हरी

सिर्फ नायिका का हृदय ही नही नायक का हृदय भी सावन में मचल उठता है उसे नायिका के बिना सूना–सूना अपना घर काटने को दौड़ता है। वह योगी होने की कल्पना तक कर लेता है।

मयना तोहे बिना भवे न भवनमा
अवरे सवनमा ना.....
घिरी घटा घनघोर, दादुर, मोर मचावे शोर
अवरे सवनमा ना.....
मयना जोगी होवे तोहरे करनमा
अवरे सवनमा ना।

जब घनघोर वर्षा होती है बिजली छिटकती है तथा मेघ गरजते हैं, अगर पुत्र घर से बाहर हो तो माँ का हृदय भय से आशंकित हो जाता है। माँ की यह असीम ममता भी कजरी में भी मुखरित हैं–

सावन भदौवा क रतिया उमड़िय दैवा गरजै हो।
दैवा जानि बरसेऊ वही वन में
जहाँ मोर अलग लड़िकन हो।

कजरी की श्रृंगारिकता

प्रतीक्षा, मिलन और विरह की अविरल सहेली, निर्मल और लज्जा से सजी–धजी नवयौवना की आसमान छूती खुशी, आदिकाल से कवियों की रचनाओं का श्रृंगार कर उन्हें जीवंत करने वाली कजरी सावन की हरियाली बहारों के साथ तेरा स्वागत है। मौसम और यौवन की महिमा का बखान करने के लिए परंपरागत लोकगीतों का भारतीय संस्कृति में कितना महत्व है–कजरी इसका उदाहरण है। प्रतीक्षा के पट खोलती लोकगीतों की श्रृंखलाएं इन खास दिनों में गज़ब सी हलचल पैदा करती हैं, हिलोर सी उठती है, श्रृंगार के लिए मन मचलता है और उस कजरी के सुमधुर बोल! सचमुच वह सबकी प्रतीक्षा है, जीवन की उमंग और आसमान को छूते हुए छूते हुए झूलों की रफ्तार है। शहनाईयों की कर्णप्रिय गूंज है, सुर्ख लाल मखमली वीर बहूटी और हरियाली का गहना है, सावन से पहले ही तेरे आने का एहसास! महान कवियों और रचनाकारों ने तो कजरी के सम्मोहन की व्याख्या विशिष्ट शैली में की है।

सावन का सुहाना माह। मैदानों में बिछी गुदगुदाने वाली हरी मखमली घास। खेतों और बगीचों में भी बस हरीतिमा ही हरीतिमा। आसमान में उमड़ते–घुमड़ते कजरारे बादलों की अनुपम छटा। मयूरों का नर्तन। बालू में नहाती हुई चिड़ियों का कलरव। सावन के झूले में झूलती हुई ललनाएँ और पेंग बढ़ाते हुए ग्रामीण सुकुमार। तभी रिमझिम बारिश की झड़ी लग जाती है और अधरों पर रसीली कजरी के मधुर स्वर फूट पड़ते हैं।

झूला लागल कदम की डारी,
झूलें कृष्ण मुरारी ना
राधा झूलें कान्ह झुलावें,
कान्हा झूलें राधा झुलावें
पारी पारी ना

मिथिला में सावनी माह में हिंडोले पर बैठकर नर–नारी मल्हार के गीत गाते हैं। राजस्थान में तीज के अवसर पर गाये जाने वाले हिंडोले के गीत भी कजरी की कोटि में आते हैं।

अगर मन के मीत साथ–साथ हों तो कजरी गाने का आनंद ही कुछ और है। राधा कृष्ण की रास लीला को माध्यम बनाकर नायिका अपनी सहेलियों के साथ ढोलक पर थाप दे–देकर अपने चितचोर को सुनाते हुए गा उठती हैं:–

कान्हा हंसि हंसि बोली बोलड़ ऊ तो करइ ठिठोली ना
राहे बाटे बहियों मरोड़ी ऊ तो करइ मचोली ना
असगर आके मिलत कुंजन में ऊ तो रोकड़ टोली ना
ग्वाल बाल संग खाये लुटाये ऊ तो दही मटकोली ना

सिर्फ इतना ही नहीं, रसिया कृष्ण ने नारी का भेष बनाकर चुड़ियों का टोकरा सिर पर रखा और चल पड़े राधा तथा गोपियों को चूड़ी पहनाने–

हरि–हरि कृष्ण बनेले मनिहारिन,
पहिनि के साड़ी रे हरी

प्रिया की हंसी ठिठोली सुनकर प्रिय भला कैसे चुप बैठ सकता है! बेला–चमेली की तरह ही उसके दिल में प्यार के अनगिनत फूल खिल उठते हैं और उनकी खुशबू से पूरा माहौल महमहा उठता है।

अरे राम बेला फूले आधी रात,
चमेला बाड़े भोर रे हरि।

प्रियतमा की झुलनी और उसके सोलहों श्रृंगार को निरखकर प्रियतम की आँखें चौंधिया जाती हैं। वह कटाक्ष करने से बाज नहीं आता–

अरे रामा करत कवल दिलजनिया,
झूला के झुलनिया रे हरी

इस प्रकार सज धजकर गोरी आखिर कहाँ चल दी? कहीं वह अपने रूप लावण्य का प्रदर्शन करने की खातिर बाजार तो नहीं जा रहीं है?

गोरी करके खूब सोलह सिंगार चली,
घूमने बाज़ार चली ना

राधा कृष्ण और ग्वाल–बालों के अनुपम प्यार की अलौकिक छटा। गोपियों के चित्त को चुराने वाले श्रीकृष्ण ने बाँसुरी की तान छेड़ दी और वंशी की आवाज के चुंबकत्व से अपने आप खिंचती चली आयी राधिका झूम–झूमकर गा उठी है। फिर तो ग्वाल–बालों का जी जुड़ा जाता है और पूरे मधुबन में जैसे मधुरस की बारिश हो उठती है। मिर्जापुरी कजरी का कमाल देखिये–

सखी मधुबन में वंशी के तान बा
राधाजी के जान बा ना,
कृष्ण बाँसुरी बजावे,
राधा झूम झूम गाये,
ग्वाल बाल के जियरा अघान बा,
राधाजी के तान बा ना
परदेश गये मोरे साँवरिया

कजरी में सिर्फ़ संयोग श्रृंगार की ही नहीं, बल्कि वियोग की भी मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। झमाझम पानी बरस रहा है। सहेलियाँ उल्लासित अह्लादित होकर झूला झूलने में मशगूल हैं। इधर ठंडी हवाएँ छेड़छाड़ करने पर उतारू हो चली हैं। काले कलूटे बादलों की गुर्राहट और बिजली की चका चौंध न जाने क्यों दिल में दहशत पैदा कर रही है। पिया मिलन की आस मटियामेट हो गई। आखिर परदेसी प्रियतम नहीं आए। आँखों से आँसू टपक रहे हैं– टप–टप

करूँ कौन जतन अरी ऐ री सखी,
मोरे नयनों से बरसे बादरिया,
उठी काली घटा, बादल गरजें,
चली ठंडी पवन मोरा जिया लरजे
थी पिया मिलन की आस सखी
परदेश गए मोरे सांवरिया

प्रतीक्षा की भी एक सीमा होती है न! भला कब तक बाट जोहती रहे राधा रानी? सोने के थाल में परोसे गये व्यंजन, गंगाजल, आस हुलास सब कुछ भीग गया कुछ तो बारिश की बूँदों से और कुछ नयनों से टपकते मोतियों से।

भारतीय परंपरा का प्रमुख आधार तत्व उसकी लोक संस्कृति है। यहां लोक कोई एकाकी धारणा नहीं है, बल्कि इसमें सामान्य–जन से लेकर पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, ऋतुएं, पर्यावरण, हमारा परिवेश और हर्ष–विषाद की सामूहिक भावना से लेकर श्रृंगारिक दशाएं तक शामिल हैं। ग्राम–गीत की भारत में प्राचीन परंपरा रही है। लोकमानस के कंठ में श्रुतियों में और कई बार लिखित–रूप में यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित होते रहते हैं। पंडित रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छंद नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री–पुरूषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति मानो गान करती है। प्रकृति का यह गान ही ग्राम गीत है..... .....। इस लोक संस्कृति का ही एक पहलू है–कजरी।

ग्रामीण अंचलों में अभी भी प्रकृति की अनुपम छटा के बीच कजरी की धाराएं समवेत फूट पड़ती हैं। यहां तक कि जो अपनी मिट्‌टी छोड़कर विदेशों में बस गए, उन्हें भी कजरी अपनी ओर खींचती है। तभी तो कजरी अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि देशों में भी अपनी अनुगूंज छोड़ चुकी है। सावन के मतवाले मौसम में कजरी के बोलों की गूंज वैसे भी दूर तक सुनाई देती है।

कजरी का आरंभ देवी वंदना से होता है। रतजगा में गायन के साथ हास–परिहास, नकल, जोगीरा तथा प्रातः स्नान से पूर्व पतियों का नाम लेकर गाने की परंपरा है। रचना विधान की दृष्टि से कजरी का नाम चौलर या चौलीर है। चौलीर में पांच फूल और चार बंदिशें होती हैं, पांचवें फूल पर कजरी समाप्त हो जाती है। यह कजरी बिना वाद्‌य यंत्रों के भी गायी जा सकती है। कजरी का दूसरा भेद है शायरी। यह भेद अपेक्षाकृत नया है। इसमें बंदिशों की संख्या निश्चित नहीं होती। इसे प्रायः पुरूष गाते हैं। गायक की आवाज तेज हो और साथ में ढोल–नगाड़े की थाप हो तभी इस कजरी की रंगत जमती है।

परंपरा एवं उत्सव

हिन्दू कैलेंडर के हिसाब से पांचवें माह भादों में कृष्ण पक्ष की तीज को कजली, कजरी तीज मनायी जाती है। यह पर्व रक्षाबंधन के तीसरे दिन और जन्माष्टमी के पांच दिन पहले मनाया जाता है। इस तीज का भी अलग महत्व है। पति पत्नी के रिश्ते को मजबूत बनाने के लिए तीज का व्रत रखा जाता है। यह भी हर सुहागन के लिए महत्वपूर्ण है। इस दिन भी पत्नी अपने पति की लम्बी उम्र के लिए व्रत रखती है व कुंवारी लड़की अच्छा वर पाने के लिए यह व्रत रखती है।

महिलाएं कजरी तीज धूमधाम से मनाती हैं। उत्साह और उमंग से भरी महिलाएं पूरे दिन निर्जला व्रत रखती हैं और पति की दीर्घायु की कामना करती हैं। सुबह से ही उत्साह में डूबी महिलाएं सूर्योदय के साथ भक्ति के रंग में डूब जाती हैं। मन ईश्वर की आराधना में लीन हो जाता है। शाम होते ही चंद्रमा के उगने की प्रतीक्षा शुरू हो जाती है। घरों में नीम की डाली लाकर उसे एक वृक्ष का रूप दिया जाता है। उसके समक्ष चने का सत्तू, खीरा, नींबू रखा जाता है और दीपक जलाया जाता है। तीज माता की कथा सुनाई जाती है। कजरी तीज के लोक गीतों से वातावरण गूंज उठता है।

चंद्रमा के उदय होने पर अर्घ्य दिया जाता है। सभी के कल्याण की कामना की जाती है। बुजुर्गों के चरण स्पर्श करके उनका आशीर्वाद लिया जाता है। उसके बाद उपवासी महिलाएं सत्तू का सेवन करती हैं। अविवाहित युवतियां भी अपने उत्तम पति की कामना से इस व्रत, पूजन को करती हैं।

कजरी के भविष्य को खतरे

कजरी मूलतः भोजपुरी में गाया जाता है। भोजपुरी भाषा को संस्कृति मान विषयों में शामिल कर लिया गया है। उपभोक्तावादी बाजार के ग्लैमरस दौर में कजरी भले ही कुछ क्षेत्रों तक सिमट गई हो पर यह प्रकृति से तादात्म्य का गीत है और इसमें कहीं न कहीं पर्यावरण चेतना भी मौजूद है। इसमें कोई शक नहीं की सावन प्रतीक है सुख का, सुन्दरता का, प्रेम का, उल्लास का और इन सब के बीच कजरी जीवन के अनुपम क्षणों को

अपने में समेटे यूँ ही रिश्तों को खनकाती रहेगी और झूले की पींगों के बीच छेड़–छाड़ व मनुहार यूँ ही लुटाती रहेगी। कजरी हमारी जन चेतना की परिचायक है और जब तक धरती पर हरियाली रहेगी कजरी जीवित रहेगी। अपनी वाच्य परम्परा से जन–जन तक पहुँचने वाले कजरी जैसे लोकगीतों के माध्यम से लोक जीवन में तेजी से मिटते मूल्यों को भी बचाया जा सकता है।

कजरी तो न जाने हमारी भोजपुरी में कहाँ भटक गयी है लेकिन भोजपुरी फिल्मों में अधनंगी लड़कियों को पंचअर्थी संवाद वाले गानों में यौन आकर्षण का नाटक करते देखा जा सकता है। ये अश्लीलता हमारी लोक संस्कृति की हत्या करती दिखती है। पहले शादियों में जो गाने सुनने को मिलते थे अब उनकी जगह ये सड़े भोजपुरी गीतों ने ले रखा है। कहने को तो ऐसे गायक कहते हैं कि हम भोजपुरी को बचाने का कार्य कर रहे हैं लेकिन ये भोजपुरी को बदनाम करते जा रहे हैं। आप किसी भी बारात में भोजपुरी के लगाय दीह चोलिया के हूक राजा जी..... बुझाता की ना बताव ए राजा गन्ना के रस ढ़ोरी में सही सही जाता की न आदि पंचअर्थी गाने पर नाचते युवक–युवतियों को देख सकते हैं। इन गानों ने कजरी के व्यवहार को भी बदल दिया है। ये अश्लीलता हमारी लोक संस्कृति के लिए खतरा है। एक और बड़ी बात है गानों की अश्लीलता को रोकने के लिए कोई ठोस कानून नहीं है। इन सब कारणों से हमारी लोक संस्कृति मिटती हुई प्रतीत होती है।

बनारस और मिर्जापुर में कजरी को पर्याप्त संरक्षण मिला, जिससे यह खूब विकसित हुई। बनारस के संगीतकारों ने इस क्षेत्र के प्रचलित लोकगीतों की तरह कजरी को भी शास्त्रीय सुरों में ढालकर उपशास्त्रीय गायन की एक नई विधा विकसित की जो काफी लोकप्रिय हुई। धीरे–धीरे इस लोकगीत की लोकप्रियता ग्राम्यांचलों में भी कम हो रही है। लोकसंगीत एवं लोक संस्कृति के प्रमुख अंग के रूप में कजरी भी लुप्त होने के कगार पर है। इस लोक संस्कृति की रक्षा इससे जुड़ कर ही की जा सकती है।

कजरी के संरक्षण के उपाय

कजरी लोक संस्कृति के संरक्षण के लिए मेरे हिसाब से कुछ कार्य किये जा सकते हैं। ये कार्य निम्न हो सकते हैं–

1) कजरी/लोक कला पर कार्यशाला का आयोजन– इस तरह के कार्यशाला से कलाकारों को कजरी/लोक कला को जानने और समझने का अवसर मिलेगा। कलाकार ये समझ पायेंगे कि कजरी क्या है। कार्यषाला से उनके अन्दर लोककला के प्रति जिज्ञासा और आकर्षण बढ़ेगा और कजरी जैसी विलुप्त होती लोक कला को पुनः हम अपने समाज में देख सकते हैं।

2) प्रचार–प्रसार– कजरी का प्रचार–प्रसार किया जाय। प्रत्येक गाँव में कजरी को पहुँचाने का जिम्मा कजरी के लोक कलाकारों को दिया जा सकता है जो उस क्षेत्र से संबंध रखते हों।

3) महोत्सव– कजरी महोत्सव जैसे कार्यक्रम करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। लेकिन ये कार्यक्रम गाँवों में हो तो कजरी को बढ़ावा मिलेगा।

4) प्रतियोगिता– कजरी पर प्रतियोगिता आयोजित की जा सकती है। प्रतियोगिता के लिए लोग पुनः कजरी को ओर जाएंगे और कजरी के बोल सुनाई देंगे।

5) फिल्में– कजरी पे बनी डाक्यूमेंट्री फिल्में भी लोगों को कजरी के प्रति जागरूक करेंगी।

कजरी के संरक्षण के लिए लोगों की सहभागिता

चूंकि कजरी गाँवों की विरासत रही है। ये बात लोगों को समझाने की जरूरत है। नयी पीढ़ी कजरी से अछूती है। नयी पीढ़ी अगर ये जान ले कि कजरी हमारी धरोहर है तो वो इसे बचा सकती है। युवा पीढ़ी तक कजरी उपरोक्त माध्यम से पहुँचाई जा सकती है। इसके संरक्षण में लोग जरूर

आगे आएंगे। गैर सरकारी संगठनों को भी इसके संरक्षण के लिए लगाया जा सकता है। ये संगठन कजरी के संरक्षण के लिए कार्य करेंगे और कार्यक्रम आयोजित करेंगे। जिसके प्रभाव से वैसे लोकगायक भी सामने आयेंगे जो कजरी गाना छोड़ किसी और गाने को लेकर चल पड़े हैं। फिल्में संचार का ससक्त माध्यम होती हैं। कजरी पर बनी डाक्यूमेंट्री फिल्म लोगों को कजरी के प्रति प्रेरित करने का कार्य करेगी।

कजरी गीत/गाने

(1)

विदवा कै दे मोरे राजा
कजरिया खेले जाकै रे नैहरवा।
जो तू बारी धना जाएउ नैहरवा
प टीका धरि जाएउ रे, सेजरिया।
टिकवा के पतिया चमके सारी रतिया
प जनु धना बाटी रे सेजरिया।

(2)

घेरि घेरि आवै पिया कारी बदरिया
दैवा बरसे हो बड़े बड़े बूंद
बदरिया बैरिन हो।
सब लोग भींजै घर अपने
मोरा पिया हो भींजै परदेस
बदरिया बैरिन हो।
दुलहिन रानी हो चीठी लिखि भेजैं
घर आओ ननदजी के भाय
बदरिया बैरिन हो।

(3)

कइसे खेले जाइब सावन में कजरिया

बदरिया घेरि आइले ननदी।
तू त चललू अकेली तोरा संग न सहेली
गुंडा घेरि लीहें तोही के डगरिया
कतना जना खइहैं गोली
कतना जइहैं फंसी डोरी
कतना जना पीसिहें जेलखाना में

.....

(4)

आये रे सावनवा नहीं आए मन भावनवा रामा
हरि–हरि जोहते दुखाली दोनों अंखियां रे हरी
केहू ना मिलावे उलटे मोहे समुझावे रामा
हरि–हरि दुख नाही बूझे प्यारी सखियां रे हरी
केही विधि जाई उड़ी पियवा के पाइ रामा
हरी हरी उड़लो न जाय बिना पंखिया रे हरी।

(5)

नहीं आये घनश्याम घेरी आयी बदरी
बैठी तीरे बज्रबाम तू न मोरी लाज थाम
सुन बिनती मोरे श्याम घेरी आयी बदरी
आयी सावन की बहार गूँजे मोरवा पुकार
पड़े बूंदन फुहार घेरी आयी बदरी
कान्हा हमें बिसरा रहे सौतन लगाय
करी कवन उपाय घेरी आयी बदरी।

लक्षमण मिर्जापुरी

(6)

बाबा भेजेले नियरवा बेटी केवरिया धइले ठाढ़
ससुर बांचेले नियरवा सैंया गैले खिसियाय
जाये देहू ए पियवा जाये देहू ना
सखिया जोहत होइहें बटिया

हो कजरिया के बहार।
बेटी कजरी खेलन अइह हो
सावन रे मास।
सावन खेलिह कजरिया ना
भदुआ खेलिह तीज
बेटी फागुन खेलहि फगुआ
हो झुलनियां के बीच।

(7)

कजरी खेलैं सरजु तिरवा
पिया संग जनक दुलारी ना।
झूला पड़त स्वर्ण का अद्‌भुत
कदम की डारी ना।
झीनी झीनी बूंदे पड़ती
घटा है कारी ना।
'दीन' मुदित अति निरखि
युगल छवि प्यारी प्यारी ना।

रामशरण दीन

(8)

बितैय पहाड़ी मेला सावन के जब कजरी आई रामा
हरी हरी मिर्जापुर में तब छायी छवी न्यारी रे हरी।
घर घर झुला झूलै करै कलोलै गलियां गलियां रामा
हरि–हरि द्रुनमुनियां खेलै जुवती औ बारी रे हरी।
मेहदी ललित लगाय करन में साजै सूही सारी रामा
हरि–हरि कुलवारी तिय गावैं चढ़ी अटारी रे हरी।
बारी नारी नाचै औ गावैं सरस भाव बतलावै रामा
हरि–हरि रस बरसावै मनहूं सुमुखि सुकुमारी रे हरी।
पुरित सहर सरंगी के सुर सहित ताल तवलन के रामा
हरि–हरि टनकारी जोड़ी घुंघरू झनकारी रे हरी।
बरसै रस जहं प्रेम प्रेमघन सुख सरिता भरि उमरै रामा

हरि–हरि रहै नगर में नित्य नयी गुलजारी रे हरी।

बद्रीनारायण उपाध्याय (प्रेमधन)

(9)

मिर्जापुर कैलऽ गुलजार होऽ
कचौरी गली सून कैलऽ बलमू
एही मिरजापुरवा से उड़लै जहजिया
पिया चली भैले रंगून
हो कचौड़ी गली.....।
पनमा ले पातर पिया तोरी धनियां
देहिया गलेला जैसे नून
हो कचौड़ी गली.....।
हियवा के मरमा वैदवो न जाने रामा
लागल करेजवा में घून
हो कचौड़ी गली सून कैले बलमू।

(10)

आई सावन की बहार मोरे बारे बलमू।
छाई घटा घनघोर, बन में बोलन लागे मोर
रिमझिम पनिया बरसे जोर मोरे बारे बलमू
धानी चद्दर सियाव सारी सबुज रंगाव
बा में गोटा टंकवाव मोरे बारे बलमू
मैं जो जइहों कुजधाम सुनै कजरी ललाम
जहाँ झूले राधेश्याम मोरे बारे बलमू
बलदेव क्यों उदास पुनि अइहों तोरे पास
मानो मोरा बिसवास मोरे बारे बलमू

द्विज बलदेव

(11)

रिमझिम बरसन लागी बुनिया, चलु सखी खेलैं कजरी
वृन्दावन की कुंज गलिन मां मिली जुली के सिगरी

जहां श्याम संग चउरी खिलावै झुलावै एक घरी
सोरह अंग सिंगार बनावहु नौरंगी चुनरी
माथे खौर नासिका बेसर गलेमाल दुलरी
श्रीधर चलहु श्याम को रिझावैं, अधिक उछाह भरी

श्रीधर पाठक

(12)

मोही नन्द के कन्हाई बिलमाई रे हरी
बहे पुरवाई और बदरिया झुक आयी रामा
कुंज में बुलाई बृजराई रे हरी
बंसिया बजाई सुनि सखि उठि आई रामा
सब जुरि आई रस बरसाई रे हरी
माधवी भी जाई जिय अति हुलसाई रामा
कजरी सुनाई मनभाई रे हरी
मिल उर लाई प्यारी पिय को भुलाई रामा
नाहिं हरिचन्द्र पछताई रे हरी

भारतेंदु हरिष्चन्द्र

(13)

सैंया बिलमि रहे परदेसवा
सपनेहु दीख सुरतिया ना।
सावन मास गरज घन बरसे
झुकी अंधेरिया ना।
बिन पिय जिय रहि रहि घबरावै
चमचम चमके बिजुरिया ना
पिया पिया रट रह्यौ पपीहा
कू कू करत कोइरिया ना
भारी उठत हूक जियरा में
सूनी देख सेजरिया ना
तुम बिन नाथ कटै नाहिं रतिया
तलफै जैसे मछरिया ना

नित उठि बाट तकूं प्रियतम के
चढ़ि चढ़ि जाऊँ अटरिया ना
सेवक कहै बिरहिनी बिलखत
अजहूंन मिली खबरिया ना
मेरो प्रीतम प्राणधार बिन
काटे कटत उमरिया ना

सेवक

(14)

हमका सावन में मेंहदी मंगा द बलमू
हाली बगीचा में जाय, लाव टटका तोराय
छोटी ननदी के हाथ पिसा द बलमू
तोहसे कइलीं तकरार पागल जियरा हमार
देवरानी से कहके रचा द बलमू
होई जिगरा मगन तोहसे कहबे सजन
आके गोड़वा के मेंहदी छोड़ा द बलमू
तोहे फुरसत हो जो कम कह लाईं जाके हम
खाली होव त टिकुली लगा द बलमू।

(15)

गोरी गोरी बहियां सबुज रंग चुनरी
पिया छोड़ी चलेनी परदेसवा।
जौं तुहु छोड़ि चलेउ परदेसवा
बताये जाउ गुनवा हो औगुनवां
जेवना बिगारेउं कि सेवा में चुकेउं
कवनि भई हमसे हो तकसिरिया
जेवना बिगारेउ न सेवा में चूकेउ
इहइ भई तोहसे हो तकसिरिया
फागुन मास धना हमारा फगुनवा
हमइ तजि गइउ हो नैहरवा।
सावन मास धना तोहरी कजरिया

तोहइ तजि चलेउं हो परदेसवा

(16)

भावे ना मोहि भवनवां बिनु मोहनवा
बादल गरजेला चमके बिचुरिया
तापर बहेला पवनवा अरे सावनवां
जैसे सावन में झहरत बुंदिया
वैसे झरेला मोर नयनवां बिनु मोहनवां
कुबजा सवत साजन बिलमावत
जाइ बसल मधुबनवां अरे सावनवां
अबले सखि मोर पिया ना आइल
बीतल मास सवनवां बिनु मोहनवां
विन्ध्य कहे जिया धड़केला सजनी
कगवा बोलत बा अंगनवां अरे सावनवां।

विन्ध्यवासिनी देवी

(17)

सावन घन गरजे रे बालमुआं
हमरे पिया परदेस में छाये
कोई नहीं बरजे रे बालमुआ।
कहत छबीले छैल पति राखो
तनिक मोरी अरजे रे बालमुआ।

भगवानदास छबीले

(18)

हरी रामा, हां रे सांवलिया
बेला फूले आधी रात चमेली भिनसारे रे हरी
कौना लगाल बेला फूल अरे कोना लगाये चमेली
बाबुल अंगना बेला फूलें ससुरार चमेली भिनसारे रे हरी
कौन ने सींचे बेला फूल अरे कौन ने सींचे चमेली
माया सींचे बेला फूल ननद चमेली भिनसारे रे हरी।

(19)

रिमझिम परै फुहारि और बुंदिया टपकी रही
झिलमिल बहै बयार पवन झलि डोल रही
डोलै नरंगिया की डार कोइलिया कूक रही
गरजै घटा घनघोर मुरइला कूजि रहे
बाबा गये परदेस बड़ी सुख दै के गए
अंगना चंदनवां कै गाछ हिंडोलना दे के गए
सैंया गये परदेस बड़ी सुख दे के गए
छतियन बजर किवरिया बियाग दुख दे के गए
जोहों बटोही तोरी बाट काहे धन नीर झरी
की तोरो नैहर दूर कि तोरी सास लड़ी
ना मेरो नैहर दूर ना मोरी सास लड़ी
हमरे बलम परदेस वहै हम सोच करै।
गरवा मैं देउं गलहार मोतिन की माल लड़ी
छोड़ो परदेसिया की आस हमारे संग चलो।
अगिया लगै गलहार मोतिन की माल लड़ी
हम तो हैं सजन तोहार देखि धन मुरझ परी।

(20)

रिमझिम बरसे लागल पनिया
चढ़ल सवनवा रे भवनवां, नाहीं आये सजनवां ना
रिमझिम रिमझिम बादर बरसे
रतिया सेजिया पर जी तरसे
जब से श्याम गये मोरे घर से
रतिया कलप कलप के हो जाला बिहनवां रे भवनवां
एक ओरि गरजे एक ओरि चमके
एक ओरि दामिनि नभ में दमके
एक ओरि गुलाब गम–गम गमके
हमका छोड़िं गये मोरे रामा केहि करनवां रे भवनवां
सब सखियां मिली कजरी गावें

हमरी बुझल आग जगावें
हमरे स्याम नहीं घर आवें
झूलब केकर संगवा सावन में झुलनवां रे भवनवां।

(21)

असों के सवनवां सैंया घरे रहौ
घरे रहौ ननदी के वीर।
आंगन तौ मोरे लेखे मधुबन, डेहरी बसें बिदेस
सेजिया लौ मोरे लेखे नागिनी पांव धरे डंस लेय
सांपन छोड़ी सांप केंचुल, नदियहु छोड़े कगार
सैंया मोरे छांड़े बारी धनिया यह दुख कहिय ना जाय
झींगुर लौ बोले बबुल तरे मुरगहु बोले पहाड़
सैंया मोरे बोलैं परदेसवा यह दुख सहिय न जाय।
सांपिन लीन्हा सांप केंचुलि नदियां लीन्ह कगार
सैंया मोर लीन्हे बारी धनिया यह सुख कहिय न जाय।

(22)

हरि–हरि कौने करनवां कान्हा जल में समाना रे हरी
गेंदवा के बहनवां सब सख के समनवां रामा
अरे रामा कालीदह में कूद पड़ल भगवाना रे हरी
नाग नाथ आये सुर सुमन झर लाये रामा
अरे रामा सुन के खबर कंस बहुत घबड़ाना रे हरी
बांसुरी बजावे मोहिनी रूप दरसावे रामा
अरे रामा ललीला अपरंपार कोई नाहिं जाना रे हरी
नागनागनी विदा कीन्ह सिर चरणन में रख दीन्हा रामा
अरे रामा पीवे जमुना जल अरू करे बखाना रे हरी
कहे निराले समझावे जो प्राणी हर गुन गावे रामा
अरे रामा राधेश्याम कह काहे अलसाना रे हरी

शायर निराले

(23)

अरे रामा उठी घटा घनघोर बदरिया कारी रे हरी
कौना दिसा से घन घहराने कहां बरस गये मेह
अगम दिसा से घन घहराने पच्छिम बरस गये मेंह
जिनके पिया परदेस बसत हैं अंसुअन भींजे गुलसारी
जिनके पिया परदेस बसत हैं छाई महलिया अंधियारी

(24)

सुगना बहुत रहे हुसियार
बिलइया बोलत बाटेना।
इधर उधर से आपन घतिया
खोजत बाटे ना।
कबौं पड़े गफलत की निरिया
जोहत बाटे ना।
रे मन मुरूख चेत जल्दी तू
सोवत बाटे ना।
कहे रूपन धर ध्यान देख
अगोरत बाटे ना।

(25)

गोड़ तोरा लागीला सैंया रे गोसइयां
अबकी सवनवां घर ही मानवहु हो रामा
अबकी सवनवां बिदेस जनि जावहु हो रामा
कतनो मनइबे धनिया कतनो बुझइबे
अबकी सवनवां मोरंग हम जाएव हो रामा
गोड़ तोरा लागीला कारी रे बदरिया
बरिसहु मूसला के धार हो रामा
पिया के जतरवा बिलमावहु हो रामा
कतनों मनइबे रे धनिया कतनों बुझइबे
छतरी ओढय हम पंथ जाएब हो रामा
अबकी सवनवां.....
गोड़ तोरा लागीला भइया छतिहरवा रे

अबकी सवनवां छतरिया न बनावहु हो रामा
पिया के जतरवा.....
कतनो मनइबे रे धनिया कतनो बुझइबे
कमरी ओढिय हम पंथ जाएब हो रामा
अबकी सवनवां.....
गोड़ तोरा लागीला भइया भेड़िहरवा
अबकी सवनवां कमरिया जनि बीनहु हो रामा
पिया के जतरवा.....
कतनो मनइबे रे धनिया कतनो बुझइबे
भींजते तितइते हम पंथ जाएव हो रामा
अबकी सवनवां.....
जौं तुहूं जाइब पिया मोरंग देसवा
हियां के कइया हम बनि जाएब हो रामा
तोहरे जतरवा बिलमाएब हो रामा
एतना वचन सुनि पिया मुसकाइले
अबकी सवनवां घर ही मनाएव हो रामा
अबी सवनवा कजरिया दूनो गाएब हो रामा।

आभार

आशीर्वाद रंगमंडल, बेगूसराय
उमाशंकर यादव
अमित कु0 जय जय
अवधेश पासवान

आलेख

स्वर और स्वरूप
रंग संदर्भ – अनिल पतंग
झूला लागल कदम की डारी – भगवती प्रसाद द्विवेदी
सावन में प्रेम की अनुभूति है कजरी – कृष्ण कुमार यादव